IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 22, Issue 2, Ver. I (Feb. 2017) PP 148-153
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

''जलीय चक्र की प्रक्रिया एवं जल की उपलब्धता : वर्तमान परिस्थितियों में भौगोलिक अध्ययन''

डॉ. श्रीचन्द

सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, **सेंट जेवियर्स पी जी कॉलेज फागी जयपुर** *(राज.)*

1.1 प्रस्तावनाः

'जल ही जीवन है' यह केवल कहावत नहीं बल्कि सच्चाई है। जल ही संसार की रचना का महत्त्वपूर्ण कारण है। वैसे भूमि, अग्नि, वायु एवं आकाश का भी इस प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान है। महत्त्वपूर्ण तथ्ययह है कि पृथ्वी पर अथाह जल संसाधन होते हुए भी मनुष्य के काम आने वाले जल संसाधनों का प्रतिशत बहुत कम है। प्रसिद्ध भू–वैज्ञानिक राय पोपकिन ने सर्वप्रथम वर्ष 1968 में जल की प्रस्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

जल की उपलब्धता

स्थान	**जल का आयतन (घन कि.मी.)**	**कुल जल का प्रतिशत;ः द्ध**
महासागर	1,315,000,000	97.2
वायुमण्डल	12,900	0.0001
बर्फ छत्रक एवं हिमनद	29,000,000	2.150
गंभीरतर भौम जल	8,300,000	0.61
लवणीय झीलें एवं अन्तः स्थलीय समुद्र	1,40,000	0.008
मृदा जल एवं अगंभीर भौम जल	66400	0.005
नदियाँ एवं जल धारायें	1250	0.0001
अलवण जल झीलें	125000	0.009

स्रोत : राय पोपकिन, 1968

शोध के तौर पर स्पष्ट है कि धरती पर उपलब्ध जल का केवल 5 प्रतिशत भाग ही जलीय चक्र प्रक्रिया में भाग लेता है। संक्षेप में धरातल पर स्थित विभिन्न जल स्रोतों, जैसे–झील, तालाब, नदियाँ, पेड़–पौधों तथा समुद्रों आदि में उपलब्ध जल वाष्पीकरण के माध्यम से वायुमण्डल में प्रवेश करता है। तापमान कम होने के कारण संघनन होकर वाष्पीकृत जल वर्षा के रूप में पुनः धरातल पर आ जाता है। इस प्रकार जल के भाप बनने से पुनः जलीयरूप में आने में जो चक्र पूरा होता है, उसे 'जल चक्र' कहते हैं।

स्थलमण्डल, जलमण्डल एवं वायुमण्डल में उपलब्ध जल ठोस, द्रव, गैस जैसी अवस्थाओं में अपनी भौगोलिक स्थिति बदलता रहता है। प्रथमतः जल समुद्रों से वाष्प के रूप में वायुमण्डल में जाता है। वहाँ से वर्षा के रूप में स्थल पर गिरता है। जल नदियों, भूमिगत जल तथा हिमनदों के पिघलने आदि के द्वारा अन्त में समुद्रों में पहुँच जाता है। सरलतम शब्दों में महासागरों से वायु में वायु से स्थल पर तथा स्थल से पुनः महासागरों की ओर जल का निरन्तर आना जाना 'जल चक्र' कहा जा सकता है।

शब्द बीजः जलीय चक्र, पृथ्वी, संघनन, वालीकरण, भौगोलिक स्थिति हिमनद।

1.2 जल चक्र की प्रक्रिया

सूर्य से प्राप्त ऊर्जा से महासागरों में उपलब्ध जल वाष्प के रूप में वायुमण्डल में आता है। महासागरों से भूमि की ओर चलने वाली हवा इसे गति देकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करती है। इसके बाद इसका जब संघनन होता है, तो उससे वर्षा होती है, जिससे यह जल नदी–नालों के रूप में पृथ्वी की ऊपरी सतह पर बहता है। आखिरकार महासागरों में प्रवेश करता है।

वर्षा से प्राप्त जल का कुछ भाग वनस्पतियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन करने तथा कुछ जल नदियों, तालाबों औरझीलों आदि से वाष्पीकरण द्वारा पुनः वायुमण्डल में चला जाता है। जलवर्षा का कुछ भाग पृथ्वी के नीचे अन्तः स्पन्दन की प्रक्रिया के द्वारा चला जाता है जिसका भी पौधों से वाष्पोत्सर्जन द्वारा ह्रास होता है। कुछ जल स्रोतों के रूप में पुनः

पृथ्वी के ऊपरी धरातल पर आ जाता है। कुछ भाग नीचे की ओर संचरित हो जाता है। इसे ही 'भूमिगत जल' कहते हैं। इस प्रकार विश्वस्तरीय जल चक्र में निम्नलिखित क्रिया महत्त्वपूर्ण है–

1.3 जल चक्र की विधियाँ

जल चक्र की प्रक्रिया में निम्नलिखित विधियाँ काम में आती हैं–

1.3.1 वाष्पीकरण–सूर्य की उष्मा के कारण पृथ्वी पर उपलब्ध जल के वाष्प – में बदलने की प्राकृतिक प्रक्रिया को ही **'वाष्पीकरण'** कहा जाता है, जिसके द्वारा महासागरोंका जल वायुमण्डल में प्रवेश करता है। महासागरों से जल का वाष्पीकरण स्वाभाविक है महाद्वीपों से अधिक होता है, क्योंकि जल की पर्याप्त उपलब्धता यहाँ ही अधिक होती है। अधिकांश भूगोल विद्वानों का मानना है कि महासागरों से 4.55 लाख घन किलोमीटर जल प्रतिवर्ष वाष्पीकरण द्वारा वायुमण्डल में पहुँच जाता है। अतः भू–सतह पर स्थित जलस्रोतों से 62 हजार घन किलोमीटर जल वाष्पीकरण द्वारा वायुमण्डल में पहुँचता है। एक निश्चित सीमा से अधिक वाष्प वायुमंडल में नहीं समा सकती है।

अतः 100 प्रतिशत आर्द्रता की स्थिति को **'सन्तृप्त'** कहा जाता है। पृथ्वी पर प्राप्त जल की कुल मात्रा का 5 प्रतिशत भाग ही जल चक्र की प्रक्रिया में आ पाता है। वाष्पीकरण एवं वर्षा में सन्तुलन कहीं भी समान नहीं होता है। आमतौर पर यह माना जाता है कि महासागरीय क्षेत्रों में वाष्पीकरण की मात्रा वर्षा से अधिक होती है। महासागरों से प्रतिवर्ष 455 लाख घन किलोमीटर जल का वाष्पीकरण होता है, जबकि दूसरी ओर वर्षा द्वारा प्रतिवर्ष मात्र 4.09 लाख घन किलोमीटर जल ही महासागरों में पुनः आ पाता है।

अतः स्पष्ट है कि महासागरों में प्रतिवर्ष 46 हजार घन किलोमीटर जल की कमी हो जाती है। इसी प्रकार स्थलीय भागों से प्रतिवर्ष 62 हजार घन किलोमीटर जल का वाष्पीकरण होता है। वर्षा द्वारा स्थलीय भागों को 1.08 लाख घन किलोमीटर जल अर्थात् 46 हजार घन किलोमीटर अतिरिक्त जल प्राप्त होता है। यह अतिरिक्त जल धरातलीय प्रवाह द्वारा पुनः महासागरों में पहुँच जाता है। अतः महाद्वीपों पर कुल वाष्पीकरण से वर्षा की मात्रा अधिक होती है।

1.3.2 वाष्पोत्सर्जन– पेड़–पौधे अपनी जड़ों से नमी सोख कर पत्तियों द्वारा प्राकृतिक प्रक्रिया के माध्यम से जल वायुमण्डल में छोड़ा जाता है उसे ही **'वाष्पोत्सर्जन'** की प्रक्रिया कहा जाता है। स्वाभाविक रूप से विभिन्न पौधों में वाष्पोत्सर्जन की क्षमता एकसमान नहीं होती है। वास्तव, में ऐसा हो भी नहीं सकता है। मरुस्थलीय क्षेत्रों में पेड़–पौधों की मात्रा कम होने के कारण वाष्पोत्सर्जन भी कम होता है। जबकि सघन वनस्पति आवरण वाले क्षेत्रों में वाष्पोत्सर्जन अधिक तीव्र होने के कारण जलीय चक्र की क्रिया विधि भी तीव्रतर होती है। जलीय चक्र की इस क्रिया विधि का भू–जल की मात्रा पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इससे भूमि का गठन एवं संरचना भी प्रभावित होती है क्योंकि पौधों की जड़ों को प्राप्त होने वाला जल अन्तः स्पन्दन द्वारा भूमि के अन्दर पहुँचता है। यह भूमि गठन की प्रकृति से ही प्रभावित होता है ।

1.3.3 वर्षा–वर्षा की औसत प्रतिदिन या प्रति घंटे को ही वर्षा की तीव्रता कहा जाता है। जिन स्थानों पर वर्षा की हवाएँ सर्वप्रथम आती हैं स्वाभाविक रूप से वहाँ वर्षा अधिक तीव्र होने की संभावना रहती है। सामान्यतः तो अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में वर्षा की तीव्रता अधिक पाई जाती है, लेकिन असामान्य रूप से कभी– कभी कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी अधिक तीव्र गति से वर्षा हो जाती है। तीव्र वर्षा से लाभ कम तथा हानि अधिक होती है। क्योंकि तीव्र वर्षा से प्राप्त जल का तीव्र गति से अन्तःस्पन्दन नहीं हो सकता है, जिससे **'भूमिगत जलीय चक्र'** प्रभावित होता है। वर्षा की मात्रा के आधार पर ही क्षेत्र विशेष में वनस्पति तथा फसलों का विकास हो पाता है।

वर्षा की मात्रा के साथ–साथ वर्षा के दिनों की संख्या भी जल चक्र संतुलन प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण होती है। वर्षा की कमी के कारण सूखा पड़ता है तो आवश्यकता से अधिक वर्षा होने पर बाढ़ें आती हैं। इस प्रकार वर्षा का स्वभाव जलीय चक्र की क्रियाविधि को प्रभावित करता है।हिमवृष्टि, ओस व तुषार आदि भी इस प्रक्रिया को नियन्त्रित करते हैं।

1.3.4 अन्तः स्पन्दन–वर्षा का पानी जैसे ही भू–सतह पर पहुँचता है, उसके एक भाग को वापस भूमि द्वारा सोख लिया जाता है। इसे ही पानी के **'अन्तः स्पन्दन'** की प्रक्रिया कहा जाता है। इसकी प्रकृति या दर भूमि की संरचना से प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए वर्षा से प्राप्त जल का कुछ भाग ढाल की प्रकृति के अनुसार प्रवाहित हो जाता है। इसी प्रकार मिट्टी की प्रकृति अन्तः स्पन्दन की प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। उदाहरणार्थं चिकनी मिट्टी में अन्तः स्पन्दन की दर बलुई मिट्टी की तुलना में तीव्र होती है।

इसी प्रकार भूमि के रन्ध्र जितने बड़े होंगे उतनी ही तीव्र मात्रा में अन्तःस्पन्दन होगा। भूमि की संरचना के साथ ही उसके अन्तर्गत पाये जाने वाला जैविक तत्व भी पानी के अन्तः स्पन्दन की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। वर्षा जल अन्तः स्पन्दन द्वारा भूमि रन्ध्रों में पहुँच कर भूमिगत जल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि मिट्टी के मृदा रन्ध्रों में वायु विद्यमान रहती हैं। जैसे–जैसे धरातलीय जल भूमि के अन्दर प्रवेश करता है तो इस वायु का स्थान ले लेता है। तकनीकी भाषा में वायु मात्रा कम होने व पानी की मात्रा बढ़ने की स्थिति को **'जलाक्रान्त स्थिति'** कहा जाता है।

स्वाभाविक है एक सीमा के बाद भूमि जल को सोखती नहीं सकती है। वैसे भूमि में जल गुरुत्वीय, केशीय और आर्द्रताग्राही के रूप में रहता है।

1.3.5 धरातलीय वेग–वर्षा के जल का वह भाग जो भूमि की ऊपरी सतह पर बहता रहता है तथा ढाल के अनुसार विभिन्न दिशाओं में चला जाता है, इसे **'धरातलीय प्रवाह'** कहते हैं। स्वाभाविक रूप से प्रवाह की गति ढाल पर निर्भर करती है। तीव्र ढाल पर प्रवाह तीव्र व कम ढाल पर प्रवाह धीमा व अन्तः स्पन्दन अधिक होता है। कई बार धरातलीय प्रवाह हानिकारक भी होता है क्योंकि इसी प्रवाह के कारण भूमि का जल अपक्षरण होता है।

मिट्टी के कण बहने लगते हैं। साथ ही जल के प्रवाह की गति इसकी मात्रा को निर्धारित करती है। प्रवाह धीमा होने पर इसके महीन कण ही बहते हैं, जबकि इसके तीव्र होने पर बड़ी–बड़ी चट्टानों के टुकड़े भी प्रवाह के साथ बह सकते हैं। सतही प्रवाह को वर्षा की मात्रा अवधि एवं गति प्रभावित करती है। स्वाभाविक रूप से वर्षा की तीव्र मात्रा में अपवाह तीव्र व कम मात्रा में धीमा होता है। इसी प्रकार धरातलीय क्षेत्र के जलग्रहण का आकार व धरातल का ढाल भी प्रवाह को प्रभावित करता है तीव्र ढलान वाले भागों में ऊपरी क्षेत्रों में वर्षा होने पर निचले क्षेत्र शीघ्र प्रभावित होते हैं।

भूमिगत जल का जलीय चक्र संतुलन में महत्त्वपूर्ण योग होता है। वर्षा का जल भूमि पर स्थित विभिन्न स्रोतों में एकत्रित होता है। अन्तःस्पन्दन प्रक्रिया द्वारा वह भूमि के अन्दर पहुँचता है, जहाँ से वह पौधों एवं जीव–जन्तुओं के उपयोग के लिए उपलब्ध होता है। पौधे इसका उपयोग प्राकृतिक रूप से अपनी जड़ों से की जाने वाली क्रियाओं द्वारा करते हैं, जबकि मानव कुएँ खोदकर भूजल को उपयोग में लेता है। पेड़–पौधे भूमि के अन्दर उपलब्ध जल को अपनी जड़ों से सोखकर पत्तियों द्वारा वाष्पोत्सर्जित कर देते हैं, उसके बाद वह जल की ***'चक्रीय क्रिया'*** में सम्मिलित होकर प्रत्यक्ष वाष्पीकरण द्वारा भी जल वायुमण्डल में पहुँचता है।

1.4 उपचक्र

जल चक्र प्रक्रिया तो प्रकृति में निरन्तर होती रहने वाली प्रक्रिया है, जो सूर्य से मिलने वाले ताप से संचालित होती है। सामान्यतया जल चक्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है, जिसे **'उपचक्र'** भी कहा जाता है।

1.4.1 लघु उपचक्र

लघु उपचक्र अल्प अवधि में पूर्ण होने वाला उपचक्र है, जो कि सामान्यतया प्रकृति व मानव के हितों के अनुरूप माना जाता है। इसे पुनः दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है–

;पद्ध **अति लघु चक्र**–जब वर्षा होती रहती है तो वायुमण्डल में ही वर्षा की बूँदों का वाष्पीकरण होता रहता है। वाष्पीकृत होकर यह जल पुनः वायुमण्डल में तापमान के कारण संघनित होकर वर्षा द्वारा धरातल पर आता है तथा अति लघु उपचक्र को पूर्ण करता है।

;पपद्ध **लघु उपचक्र**–महासागरों से जल वाष्पित होकर वाष्प के रूप में गतिशील होने के बाद संघनित होकर घर्षण द्वारा पुनः महासागरों में पहुँच जाता है। अर्थात् महासागरों से जल वायुमण्डल में, वायुमण्डल से पुनः महासागरों में आकर लघु उपचक्रको पूर्णता प्रदान करता है।

1.4.2 दीर्घ उपचक्र

इस जलीय उपचक्र को पूर्ण होने में लघु उपचक्र की तुलना में कहीं अधिक समय लगता है। यह मानव के हितों की पूर्ति दीर्घकाल में ही करता है। सामान्यतः इसे दो प्रकार से विभाजित किया जा सकता है–

;पद्ध **दीर्घ उपचक्र** जब वर्षा जल भूसतह पर गिरता है तो इस जल का कुछ भाग तुरन्त ही भूपृष्ठ से (वाहित जल में से) वाष्पीकृत होकर वायुमण्डल में पहुँच जाता है। घर्षण द्वारा पुनः भू–पृष्ठ पर गिरकर ***'दीर्घ जल चक्र'*** पूर्ण होता है।

;पपद्ध **अति दीर्घ उपचक्र** वर्षा के उपरान्त जो जल भूसतह पर वाहित होता है उसका कुछ भाग भूमि में स्पन्दित हो जाता है, जो वनस्पति की जड़ों द्वारा सोख लिया जाता है। वनस्पति से वाष्पोत्सर्जन एवं वाष्पीकरण द्वारा यह जल पुनः वायुमण्डल में पहुँच जाता है। वर्षा द्वारा पुनः भूसतह पर आ जाता है। इस प्रकार के उपचक्र में सर्वाधिक समय लगता है।

1.5 जल चक्र की सीमाएँ

जिस जल चक्र की जो आदर्श स्थितियाँ मानी जाती हैं, वे सामान्यतः व्यवहार में कम ही पाई जाती हैं क्योंकि इसके स्वाभाविक चलन में कई प्रकार की बाधाएँ होती हैं, जो संक्षेप में निम्नानुसार हो सकती हैं–

1. वनों का विनाश

इससे पारिस्थितिकीय संतुलन गड़बड़ाता है, जो अन्ततः जल चक्र को सीधेया परोक्ष रूप से प्रभावित करता है।

2. पर्यावरण प्रदूषण

प्रदूषण से तो सीधे रूप में वर्षा ही प्रभावित होती है, जो अंततः जल चक्र को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है

3. औद्योगीकरण

बढ़ते औद्योगीकरण के कारण वायुमण्डल में धूलिकणों की मात्रा में परिवर्तन आ जाता है क्योंकि कारखानों से विसृजित ये ठोस कण वर्षा की बूँदों के निर्माण के लिए आर्द्रताग्राही नाभिक का कार्य करते हैं। इस प्रकार वायुमण्डल में ठोस कण प्रदूषण का प्रभाव बादलों के निर्माण, वर्षा की मात्रा एवं प्रतिरूप प्रभावित होते हैं।

4. अवैज्ञानिक खनन

एक ही स्थान पर गहराई से खनन कार्य जारी रखने से जल चक्र प्रभावित होता है।

5. अन्य

;पद्ध ओजोन परत का ह्रास
;पपद्ध कृत्रिम वर्षा की कोशिशें
;पपपद्ध नगरीयकरण
;पअद्ध सीमेंट के जंगलों का विस्तार
;अद्ध बड़े बाँधों का निर्माण
;अपद्ध पानी के दुरुपयोग

1.6 जल सम्पदा

शोध में वर्णित विवरण से स्पष्ट है कि पृथ्वी पर जल की प्राप्ति जलीय– चक्र की क्रिया द्वारा होती है, पानी एक ऐसा तत्त्व है जो ठोस, तरल एवं गैसीय, तीनों ही अवस्थाओं में पाया जाता है। संसार में सागर जल के सबसे बड़े स्रोत हैं। सागरों का जल सूर्य की ऊर्जा के कारण वाष्प बनकर वायुमण्डल में प्रविष्ट हो जाता है। संघनन की प्रक्रिया के द्वारा जलवाष्प के बादल बनने से वर्षा होती है। वर्षा का यह जल पृथ्वी के धरातल पर पहुँचने पर तीन भागों में बँट जाता है–

(i) नदी–नालों के माध्यम से सागर में पहुँचने वाला जल।
(ii) सौर उष्मा के कारण जलवाष्प के रूप में वायुमण्डल में पहुँचने वाला जल।
(iii) पृथ्वी के अन्दर पहुँचने वाला जल।

स्पष्ट है कि भूमण्डल का दो–तिहाई भाग जलाच्छादित है, किन्तु इसका बहुत छोटा अंश ही स्वच्छ और उपयोग योग्य जल के रूप में रहता है, जो भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए आवश्यक होता है। इसी से मिट्टी के स्वास्थ्य का और पेड़–पौधों के लिए पोषण तत्त्वों की उपलब्धता का नियमन करके पर्यावरण का निर्धारण होता है। पानी को मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं के समाकलित दृष्टिकोण के साथ–साथ भूमि उत्पादन कार्यक्रमों के विकास और प्रबन्धन, सामाजिक प्राथमिकतायें आर्थिक गतिविधियों आदि के साथ ही साथ प्राकृतिक रूप में भी जानने का प्रयास करना चाहिये।

राय पोपकिन (1968) के अनुसार, विश्व की सम्पूर्ण जलसम्पदा का 97.2 प्रतिशत जल समुद्रों में लवणीय जल के रूप में रहता है, शेष 2.7 प्रतिशत भाग महाद्वीपों में पाया जाता है, जो कि अलवणीय होता है। इस सम्पूर्ण महाद्वीपीय जल (2.7:) का अधिकांश भाग उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवीय क्षेत्रों में हिमनदों के रूप में जमा हुआ है। वायुमण्डल में तो कुल जल का 0.001: भाग पाया जाता है। इस जल उपलब्धि को समंकों के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

विश्व में जल का विवरण

स्थान	आयतन (घन कि.मी.	कुल जल का प्रतिशत
महासागर	1.315 अरब	97.2
महाद्वीप	37595 करोड़	2.7
वायुमण्डल	12 हजार	0.001

स्पष्ट है कि अलवणीय जल का 20 प्रतिशत भाग ही तरल रूप में उपलब्ध है। इसका भी 98.4 प्रतिशत भाग भूमिगत है। शेष 1.00 प्रतिशत भाग ही झीलों व तालाबों में है।

जहाँ तक भारत का सवाल है दक्षिण अमेरिका को यदि छोड़ दिया जाये तो भारत में सर्वाधिक वर्षा होती है, जो कि निम्न तालिका से स्पष्ट है–

भारत/महाद्वीपों में वर्षा का वार्षिक औसत

महाद्वीप/भारत	वर्षा की मात्रा	वर्षा का प्रतिशत
दक्षिणी अमेरिका	1596	26.04
भारत	1150	18.76
उत्तरी अमेरिका	808	13.18
यूरोप	764	12.46
अफ्रीका	725	11.82
एशिया (भारत को छोड़कर)	630	10.27
आस्ट्रेलिया	456	7.44

स्रोतः विभिन्न मीडिया रिपोर्ट के माध्यम से

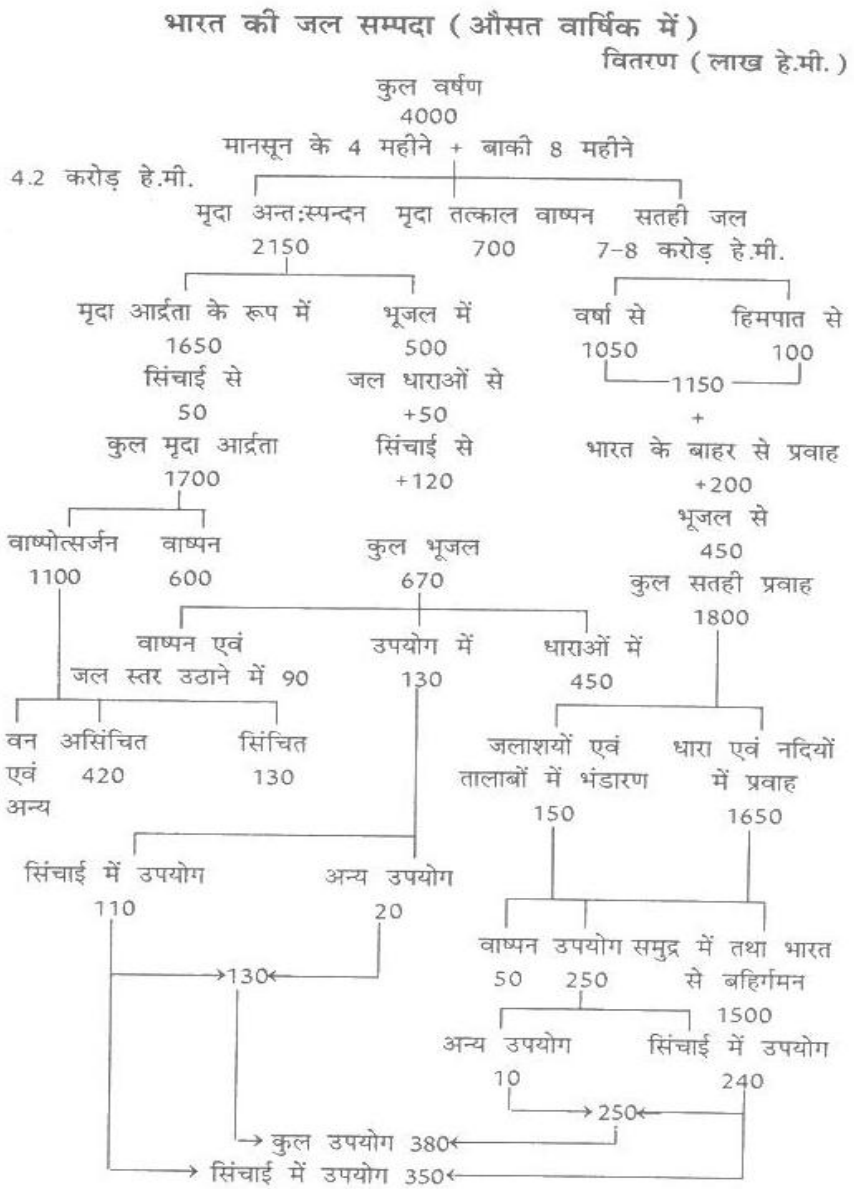

1.7 शोध निष्कर्षः

स्पष्ट है कि भारत के पास विश्व के कुल जल संसाधनों का 6 प्रतिशत भाग है। इससे विश्व की 15 प्रतिशत जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है। एक दृष्टि से देखें तो भारत की जल सम्पदा संयुक्त राज्य अमेरिका की जल सम्पदा के लगभग बराबर है जबकि उसकी तुलना में इसका धरातल 40 प्रतिशत ही है। इसके बावजूद भारत की प्रति व्यक्ति वार्षिक जल की खपत केवल 3,200 हे.मी. है, जबकि सोवियत संघ में 17,500 हे.मी., जापान में 6,500 हे .मी. और संयुक्त राज्य अमेरिका में 6,200 है.मी. है। जबकि विकास के साथ– साथ अधिक जल की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग के वर्ष 2011 के अनुमानों के अनुसार देश में प्रतिवर्ष लगभग 6,000 लाख हेक्टेयर मीटर जल वर्षा तथा बर्फ से प्राप्त होता है। इसमें से 700 लाख हेक्टेयर मीटर जल तो तत्काल वाष्पन से नष्ट हो जाता है। 2150 लाख हेक्टेयर मीटर जल मिट्टी में रिस कर चला जाता है।शेष 1150 लाख हेक्टेयर मीटर जल सतही जल के रूप में रहता है। भारत में जल उपलब्धता को सर्वप्रथम वर्ष 1975 में नाग व कठपालिया ने चार्ट के रूप में इस प्रकार पेश किया था, जो आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

- अग्रवाल, अनिल एवं सुनीता, नारायण (1998) : बूंदों की संस्कृति, सेन्टर फार साइंस एण्ड इनवायरनमेंट, नई दिल्ली।
- भान, सूरज (1983) : फसलों में जल प्रबन्ध, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।
- भान, सूरज (1982) : मृदा एवं जल संरक्षण, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।
- भारत सरकार प्रकाशन (1986) : पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1961
- भारत सरकार प्रकाशन (1974) : जल (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974
- गुर्जर, राम कुमार (2000) : पर्यावरणीय समस्याएँ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर।
- गुर्जर, राम कुमार एवं जाट, बी.सी. (2001) : जल प्रबन्ध विज्ञान पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर।
- गुर्जर, आर.के. एवं माथुर, पी.सी. (1992) : जलग्रहण विकास कार्यक्रम, मरूधरा अकादमी, जयपुर।